# वैदिक- साहित्य में राष्ट्रीय चिन्तन

वैदिक उदात्त भावना नि:संदेह सराहनीय है यह भावना मानव को मानवीयता का सन्देश देती है. "मनुर्भव जनया दैव्यं जना:" हे मानव। तू ईसाई, मुसलमान, सिख, जैन व हिन्दू न बन, अपितु मानव बन, मननशील व विवेकशील होकर कल्याणकारी कार्य कर, क्यों कि...?

राष्ट्र व्यक्ति से महान् है तथा उसकी सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनैतिक, धार्मिक व सामाजिक उन्नति का आधार है। राष्ट्र की समुन्नति में ही व्यक्ति का उत्थान है। सुसंस्कृत एवं सच्चरित्र नागरिक ही देश को समुन्नत बना सकते हैं। मानव विचारों की प्रतिमूर्ति है। जैसे विचार होते हैं तदनुरूप ही वह बन जाता है। किन्तु सद्विचारों के विकास मे सुसंगति, स्वाध्याय, पारिवारिक परिवेश "घर" है। सुसंस्कृत माँ और पिता से जो संस्कार बालक ग्रहण करता है वही आगे जाकर विससित होते हैं। गृहरूपी पाठशाला की प्रथम गुरु माँ होती है अत: कहा जाता है " माता निर्माता भवति" माँ को सुशिक्षित एवं सद्विचारों से पूर्ण होना चाहिये तभी वह उत्तदरायित्वपूर्ण नागरिकों का निर्माण कर सकती है। पाश्चात्त्य विचारक भी इस सत्य के समर्थक हैं कि माँ निर्माता है तथा राष्ट्रीय निर्माण में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। "दी हॅन्ड दॅड शेक्स दी क्रैडिल इज दी हैन्ड दैट रुल्स दी वर्ल्ड", सुसन्तति के द्वारा माँ शासन शक्ति से परिपूर्ण है। महा पुरुषों के मूल में उनकी माँ की ही प्रमुख भूमिका रही है। किन्तु ये सद्विचार कहाँ से आते है? इस प्रश्न का उत्तर है वैदिक साहित्य का अपार ज्ञान और विज्ञान का सागर, जहाँ से ये ज्ञान रूपी मोती प्राप्त होते हैं।

वैदिक साहित्य में राष्ट्रीय चिंतन का प्रमुख स्थान है जहाँ राष्ट्रोन्नति के लिए संगठन, तेजस्विता व उद्यम, की कामना की गई है। अथर्ववेदीय ऋचा के अनुसार कोई व्यक्ति अपना जन-धन राष्ट्र को अर्पण करने की भावना से राष्ट्ररक्षक के समीप आता है तथा कहता है: "इमं परिराष्ट्राय धत्त" अर्थात् इसे राष्ट्र के लिए धारण करो। वैदिक साहित्य में राष्ट्रीय कल्पना उदात्त तथा उच्चकोटि की है:

**"येन देवं सवितारं परि देवा अधारयन् तेनेमं ब्रह्मणस्पते परि राष्ट्राय धत्तन।।(अथर्व १४/२४/१)**

हे महाज्ञानिन्। नियकाम महात्मा जिसके द्वारा सर्वोत्पादक भगवान को सब प्रकार धारण करते हैं, उसी के द्वारा तुम सब लोग इसको राष्ट्र के लिए सब प्रकार

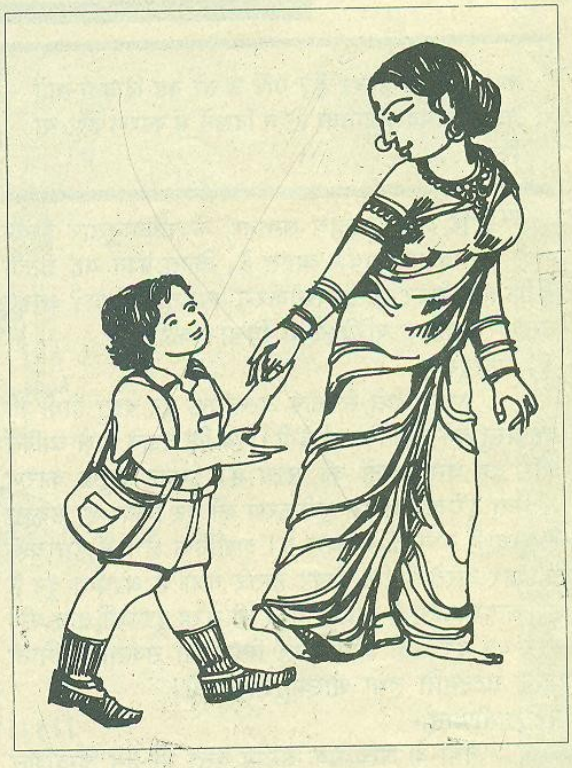

धारण करो।

राष्ट्र धारण करने के लिए महान् सामर्थ्य चाहिये- **"येन देवं सविताएं परि देवा अधारयन्"**, निष्कामज्ञानी जिस सामर्थ्य से सविता देव को धारण करते है, वह साधारण मनुष्य नहीं कर सकता। देव को धारण करने के लिए देव बनना पड़ता है। राष्ट्र-धारण करने के लिए भी उतना सामर्थ्य चाहिये, जितना भगवान के धारण करने के लिये। स्वार्थ-त्याग से ऊपर उठकर सर्वहितसाधन के भाव से प्रेरित होकर जो लोग राष्ट्र का कार्य करते हैं। वही राष्ट्र धारण कर सकते है:-

**"आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्य: शूर इषव्योऽति व्याधी महारथो जायतां दोग्धी धेनुर्वोढा नड्वा नाशु:. "यजु २२/२२** यजुर्वेद की ऋचा वैज्ञानिक वर्ण व्यवस्था पर प्रकाश डालती है। जिन जिन पदार्थो से एक राष्ट्र समृद्ध हो सकता है, उसका निरूपण किया गया है। जिस राष्ट्र में तेजस्वी ब्राह्मण न हों ब्रह्मवेत्ता न हों, सकल विद्याओं की शिक्षा देने वाले महाचार्य न हों, अत: राष्ट्र हितचिन्तकों का यह प्रथम कर्तव्य है कि वे यत्न करके अपने देश में प्रामाणिक विद्वानों को बसाऐं, ताकि विद्या की वृद्धि और अविद्या का सदा नाश होता रहे। नित्यनवीन आविष्कारों से राष्ट्र की भी वृद्धि होती रहे।

किन्तु केवल विद्याव्यसनी ब्राह्मणों से ही राष्ट्र का संचालन नहीं हो सकता। राष्ट्ररक्षा के लिए बुद्धिबल के साथ बाहुबल भी चाहिये। सनत्कुमार ने छान्दोग्य उपनिषद् में ठीक ही कहा है:

**"बलं वाव विद्यानद्भूयः, अपि हि शतं विज्ञानवतामेको बलवाना कम्पयते"** (छान्दोग्य)

अर्थात् बल विज्ञान से बढकर है, एक बलवान सैकडों विज्ञानियों को कंपा देता है। अतः ब्राह्मणों के साथ योद्धओं का भी आंकलन करें। योद्धा नाममात्र के ही न हों, अपितु वे शस्त्रास्त्र व्यवहार में निपुण, शत्रु को कम्पित करने वाले महारथी तथा शूरवीर हो। देशमें दुधारू गौंओं की भरभार हो, घोडे, बैल तथा यातायात के समस्त साधन हो। स्त्रियाँ बुद्धिमती नागरी एवं आवश्यकता पड़ने पर नगर तथा राष्ट्र का प्रबन्ध करने में समर्थ हों? सन्तान बलवान, तथा साधन सम्पन्न हो। अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि और उनके कारण होनेवाले दुर्भिक्ष भी न हों। हमारी इच्छानुसार वृष्टि हो जाए। आजीविका कमाने में कोई बाधा न हो, कमाई सफल तथा सुरक्षित हो। धनधान्य की त्रुटि न हो, तथा समय पर सभी फसल पक सके।

राष्ट्र की समुन्नति का आधार है सदाचरण, जिसका मूल केन्द्र परिवार है। सद्व्यवहार की धुरी पर घूमता परिवार कल्याणमय होता है। वेदोपदेश है कि पारिवारिक व्यवहार सरस तथा समानतामय होना चाहिये:

**"सहृदयं सामनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः। अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या।।" अथर्व ३/३०/१-३** अभिप्राय है कि राष्ट्र या परिवार के सुख संविधान की समृद्धि तभी हो सकती है, जब परस्पर प्रीति हो। किसी को किसी से वैर विरोध न हो। इसके लिए सभी की हार्दिक तथा मानसिक दशा में समता होनी चाहिये। अर्थात् सभी के दिल दिमागों में एकता हो। जैसे गौ का अपने बछड़े के प्रति प्रेम होता है वैसा पारस्पारिक प्रेम होना चाहिये। वैदिक उपमाओं का निरालापन उल्लेखनीय है। माता-पिता के स्नेह में स्वार्थ कि गन्ध होती है, क्यों कि वे सन्तान को बुढापे का सहारा समझकर, लाड प्यार से पालते हैं। अतः वैदिक साहित्य में गौं और बछड़े का उदाहरण निस्वार्थ प्रेम के व्यक्तीकरण हेतु दिया गया है। जिस परिवार या राष्ट्र में ऐसा निस्वार्थ प्रेम होगा वहाँ सदा ही सुमति और सुगति बनी रहेगी।

वैदिक ऋचाओं में केवल राष्ट्रीय चिन्तन ही नहीं अपितु समस्त संसार को एक सूत्र में पिरोना है, चिंतन भी समाहित है। इस चिन्तन के विकास के लिए परिवार तथा राष्ट्र, दो सोपान हैं, इस प्रेम का अभ्यास सर्वप्रथम परिवार में होना चाहिये। परिवार में माता-पिता-पुत्र-पुत्री-बहन तथा पत्नी आदि होते हैं तथा इन सब में परस्पर प्रीति रखने का उपाय है कि सबका व्रत तथा उद्देश्य एक हो। परस्पर की प्रीति से परिवार में एक सामरस्य बना रहता है। सामरस्य योग के अभाव में ही पारिवारिक विघटन होता है। मधुर व्यवहार एवं मधुर भाषण के अभाव में कलह-क्लेश वैमनस्य एवं विखराव की स्थिति उत्पन्न हो जाति है। जिस ज्ञान से फूट उत्पन्न हो, विद्वेष बढे, वह ज्ञान नही अपितु ज्ञानाभास है। संसार में दुःख का मूल है। उलटा ज्ञान या अज्ञान। अतः वेदोपदेश है:

**संज्ञपनं वो मनसोऽथो संज्ञपनं ह्यदः। अथो भगस्य यच्छान्तं तेन संज्ञपयामि वः।।" (अथर्व ६/८४/२)**

अभिप्राय है कि तुम्हारे मनों का एकसमान बोधन हो, और तुम्हारे हृदयों का एकरस संज्ञपन हो, और ऐश्वर्यप्राप्ति के लिए जो परिश्रम है, उससे तुम्हें संज्ञानयुक्त करता हूँ। पारिवारिक या राष्ट्रीय सम्पत्ति के लिए सम्मिलित प्रयत्न करने से सफलता मिलती है। उलटा ज्ञान नष्ट करने के लिए निरन्तर ज्ञानार्जन तथा ज्ञानदान में तत्पर रहना चाहिये।

जीवन एक संग्राम है, तथा इस संग्राम में विजयी होने के लिए सद्बुद्धि तथा विवेक का होना परमावश्यक है। जीव को समरांगण में विजयी बनाने हेतु ईश्वर ने ऐसे साथी दिये है जो सदा तत्परता से इसके साथ रहते है- वे हैं "प्राण", इन प्राणों को अपना सखा बनाना आत्मा का कार्य है:

**"स वावशान इह पाहि सोमं मरुदामिरिन्द्र सखिभिः सुतं नः। जातं यत्वा परि देवा अभूषन् महे भराय पुरुहूत विश्व।।" (ऋग्वेद ३/५१/२)**

प्राणों को सखा बनाकर प्राप्त की रक्षा करना, और अप्राप्त को प्राप्त करना जीव का कर्तव्य है। ईश्वर ने इस संग्राम के लिए इसके चारों ओर देवों को खड़ा कर दिया है। जीवन-संग्राम में ये देव इसके सहायक हैं। इसके सखा प्राणों ने इसके लिए ब्रह्मामृत तैयार किया है। उसकी यदि

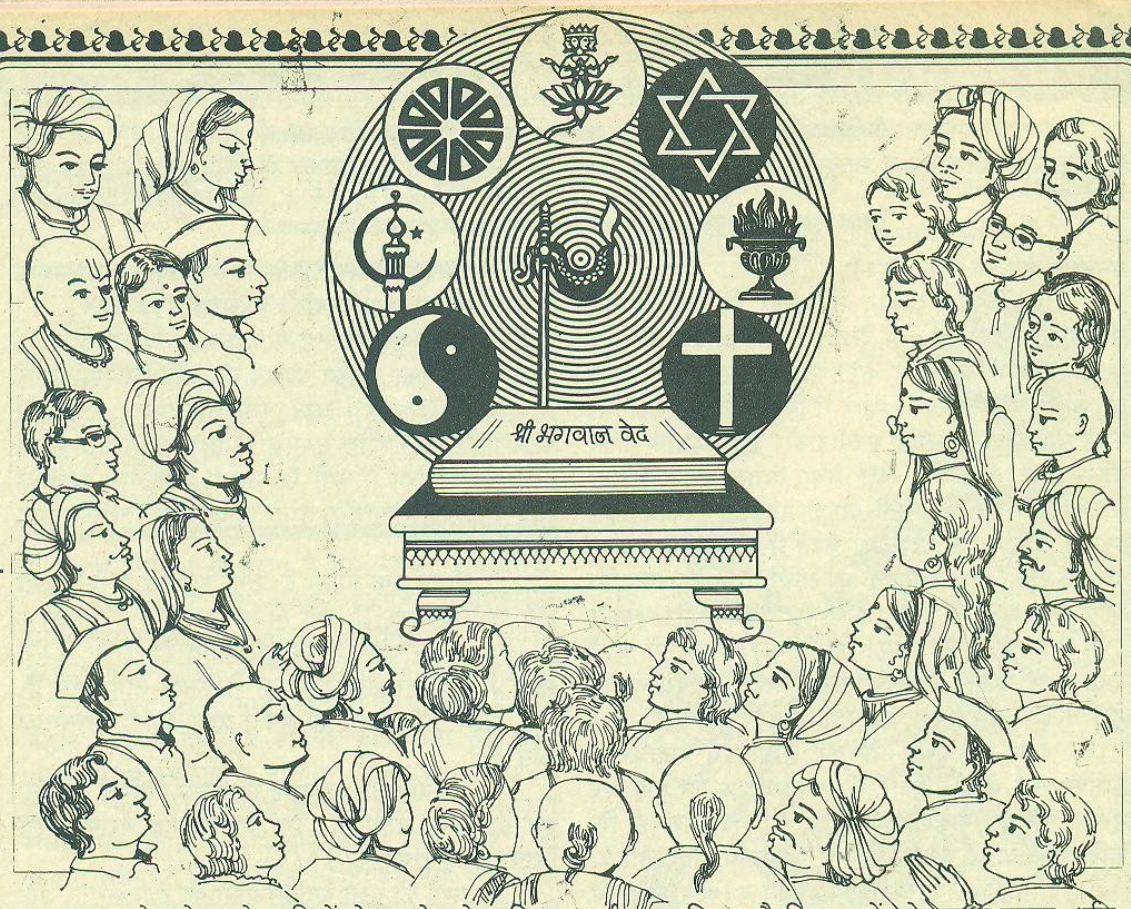


यह रक्षा करले, तो अपने साथियों के सहयोग से, रक्षित सोम का पान करने से यह अमृत हो जायेगा, अन्यथा जन्म-मरण का जंजाल सिर पर है।

ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में इस जीवन संग्राम का अनेक बार विविध प्रकार से वर्णन हुआ है। वहाँ इस संग्राम को देवासुर संग्राम कहा गया है। देवों तथा असुरों का सदा ही युद्ध ठना रहता है। अनेक बार प्रतीत होता है कि देवता हार जायेंगे, किन्तु अन्ततः देवताओं की विजय होती है क्योंकि "देव" सत्यपक्षावलम्बी का नाम है। संसार का शाश्वत नियम है त्यि की विजय नही होती। संसार का **"सत्य मेव जयते"** असत्य की विजय नहीं होती। **"सत्य मेव देवाः अन्ततः मनुष्याः", (शतपथ)** अर्थात् देवता सत्यस्वरूप तथा मानव मिथ्याभाषी होते हैं। जीव रूपी "इन्द्र" को पापभावों रूपी असूरों से युद्ध करना है। निस्सन्देह दिव्यभाव इसके सहायक है, किन्तु जब तक यह परमदेव की सहायता प्राप्त नही करता तब तक विजय संदिग्ध है।

**आधुनिक युग में आसुरी शक्तियों का विस्तार इस बात का सूचक है कि मानव उलटे ज्ञान का पोषक बन गया है। मानव होकर मानव के खूनका प्यासा होना पशुता का चिन्ह है। "धर्म" के अभिप्राय को भूलकर, धर्म के नाम पर लडना उसके अविवेक का परिचायक है। "ऋतम्भराप्रज्ञा"** से अपरिचित होकर वह निरन्तर विनाशलीला में जुटा है। धर्म का अभिप्राय है दिव्य गुणों को धारण करना, धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय, निग्रह, धी विद्या, सत्य तथा अक्रोध को धारण कर ही वह धार्मिक या धर्मानुरागी कहलाता है। जब इन गुणों से वंचित है फिर मजहब के नाम पर उग्रता का आतंक का प्रस्ताव क्यों? वैदिक ऋचाओं ने मानव को मानव बनने का अवाहन किया है-**"मनुर्भव जनयादैव्यं जनाः"** अर्थात हे मानव तू ईसाई, मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध व हिन्दु न बन, अपितु मानव बन, मननशील व विवेकशील होकर कल्याणकारी कार्य कर। संसार में प्रेम, शान्ति, सामरस्य व मधुर व्यवहार का प्रसार कर। ये वेदोपदेश विश्वकल्याण की भावना से अनुप्राणित है। सबल व शान्तिप्रिय राष्ट्र ही अन्य राष्ट्रों में सद्भावना व स्नेह के प्रसार द्वारा विश्वशान्ति के स्वप्नों को साकार कर सकते हैं। वैदिक राष्ट्रीय चिंतन को व्यवहार की अपेक्षा हे, तथा व्यवहार और कर्म का केन्द्र बिन्दु है जनसमुदाय। सार्वजनीक वैदिक चिन्तन को समझने के लिए वैदिक साहित्य का स्वाध्याय, मनन तथा चिन्तन अपेक्षित है जो सुदृढ राष्ट्र का मूलाधार है। वैदिक राष्ट्रीय चिन्तन सर्व हितकारी, कल्याणमय, सुखदायक, शान्तिप्रसारक, एवं मंगलमय है।.....

● **डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी**
**बरेली**